



टिप्पणी

19

भारतीय समाज की संरचना

हमने भारतीय संस्कृति की विविधता के विषय में, इस देश में रहने वाले तरह तरह के लोगों के बारे में और उनके विविध रीति-रिवाजों और परम्पराओं के बारे में विचार विमर्श किया है। सम्भवतः विश्व के अन्य देशों में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ के लोगों की क्षेत्र (उत्तरी भारत, उत्तरी पूर्वी भारत, दक्कन और दक्षिणी भारत आदि), भाषा (हिन्दी, तमिल और तेलुगू आदि) और धर्म (हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, जैन और सिख) आदि कई तथ्यों के आधार पर विविध प्रकार की पहचान है। इन पहचानों में से प्रत्येक और इसी प्रकार की अन्य समानताएँ एक विशिष्ट सामाजिक सम्बन्धों अर्थात् एक विशिष्ट सामाजिक संरचना का निर्माण करती हैं। फिर भी यहाँ ऐसे बहुत से तन्तु हैं जो सभी निवासियों को एक सूत्र में पिरोते हैं। अतः भारतीय सामाजिक संरचना को समझना इसलिए आवश्यक है कि इससे समाज में एक दूसरे के साथ समबन्ध स्पष्ट होते हैं। इस संरचना से यह भी पता चलता है कि हमारे समाज में किस प्रकार की सामाजिक संस्थाएँ कार्यरत हैं और समय के साथ उनके स्वरूप में कैसे परिवर्तन हुआ। इस पाठ में आप पढ़ेंगे कि विगत युगों में भारतीय समाज में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं और आज क्या स्थिति है?



उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :

- भारतीय समाज की संरचना का परीक्षण कर सकेंगे;
- भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्रचलित अस्पृश्यता की प्रथा का वर्णन कर सकेंगे;
- भारत में दास प्रथा किस रूप में विद्यमान थी, इसका विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे;
- पुरुषार्थ, आश्रम और संस्कार की अवधारणा को समझ सकेंगे;
- जजमानी व्यवस्था का वर्णन कर सकेंगे;
- भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवार और विवाह की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- भारतीय सामाजिक संरचना में नारी के स्थान का आंकलन कर सकेंगे;
- भारत में आदिम जनजाति समूह की दशा का परीक्षण कर सकेंगे।



टिप्पणी

19.1 भारतीय समाज का ढांचा

जनजाति समूह प्राचीन नृजातीय-सामाजिक संगठनों में से एक है जिसकी अलग पहचान है। भारत के विभिन्न भागों में पर्याप्त संख्या में मुण्डा, हो, उराँव, भील, गद्दी, सन्थाल, कोल, कांध, खासी, गारो, मिजो, नागा आदि आदिम जनजातियाँ पायी जाती हैं। इन सबको भारतीय संविधान की एक अनुसूची में दर्ज किया गया है और इसीलिए इन्हें अनुसूचित जनजाति के नाम से जाना जाता है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि अनुसूचित जनजाति कौन हैं तथा एक जनजाति समूह वर्ण और जाति के आधार पर बने अन्य जनसमूहों से किस प्रकार भिन्न है? इसका उत्तर इन जनजाति समूहों के क्रियाकलापों में निहित है। हम इन जनजाति समूहों को निम्नलिखित विशेषताओं से पहचान सकते हैं (i) सभी सदस्यों के बीच खून का रिश्ता होता है। (ii) समूह में सभी सदस्यों का बराबरी का स्थान है। (iii) सभी सदस्य विश्वास करते हैं कि वे एक ही पूर्वज की सन्तान हैं। (iv) सभी सदस्यों का समूह के संसाधनों पर समान अधिकार होता है। (v) निजी सम्पत्ति का ज्ञान प्रायः नहीं के बराबर है। (vi) केवल आयु और लिंग के आधार पर ही सामाजिक भेदभाव होता है। ये जनजाति समूह प्रायः एक से ज्यादा कुलों से बनते हैं। कुल एक 'बहिर्विगही' संस्था है। जबकि जनजाति एक अन्तर्विगही संस्था है। ऐसे जनजाति समूह वैदिक युग में भी होते थे। भरत, यदु, तुर्वस, द्रुहयु, पुरू, अनु आदि कुछ प्रमुख आदिम जनजाति समूह थे। इन जनजाति समूहों का मुखिया राजा कहलाता था, जो सभी समकक्षों में प्रथम होता था। इन लोगों में वर्ण अर्थात् रंग के आधार पर भेदभाव होता था। जो लोग जनजाति समूहों के सदस्य नहीं होते थे वे दास वर्ण कहलाते थे। उनकी भाषा भी अलग होती थी, रंग काला होता था और वे भिन्न देवताओं की पूजा करते थे।

यह प्रारम्भिक भेदभाव बाद में जटिल वर्णव्यवस्था में बदल गया जिससे इन जनजाति समूहों के स्थान पर समाज चार श्रेणियों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामक वर्गों में बंट गया। इन जनजाति समूहों के समय-समय पर होने वाले अंदरूनी तथा आपसी लड़ाई-झगड़ों के परिणामस्वरूप, पराजितों पर आधिपत्य तथा लूटी गई संपदा का विजेताओं द्वारा हड़पन और धन का असमान वितरण इन श्रेणियों के उभरने के प्रमुख कारण थे।

ब्राह्मण वर्ण के सदस्य प्रायः पुरोहितों का काम करते थे। क्षत्रिय राजनैतिक कार्यों में संलग्न रहते थे। वैश्य प्रायः किसान होते थे और शूद्र सेवा का काम करते थे। पहले दो वर्ण मिलकर संख्या में अधिक तथा उत्पादन में अग्रणी तृतीय वर्ण वैश्यों का शोषण करते थे और तीनों वर्ण मिल कर शूद्रों का शोषण करते थे। ऊपर के तीनों वर्णों का 'उपनयन' संस्कार होता था और इन्हें 'द्विज' कहा जाता था।

उत्तर वैदिक काल में आर्थिक व्यवस्था में बहुत अधिक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों को नई विचारधाराओं की सहायता की आवश्यकता थी, जो अनेक प्रगतिशील धार्मिक आन्दोलनों के रूप में उन्हें प्राप्त भी हुई जैसे बौद्धधर्म जिसने हिन्दु धर्म की सामाजिक व्यवस्था को नकार दिया। लेकिन बौद्धधर्म जाति व्यवस्था को पूरी तरह नकार नहीं सका। बौद्ध मत में समाज की पदवियों में क्षत्रिय सबसे उच्च जाति कही जाती थी। ब्राह्मणों द्वारा उत्पीड़ित वैश्यों ने



टिप्पणी

बड़ी संख्या में इन धर्मों को अपनाया जिससे उन्हें समाज में आदर मिल सके। चूंकि बौद्ध और जैन धर्म मठों में किसी प्रकार के जातिवाद के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता था।

वर्ण/जाति प्रथा में फिर परिवर्तन आया जब नए वर्ग जैसे शक, कुषाण, पार्थिसन और इंडो-ग्रीक (भारतीय-यूनानी) आदि भारत में आ गए। फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में भी परिवर्तित हुई। शहरीकरण का विस्तार, हस्तशिल्प का उत्पादन, और व्यापार के विकास-विस्तार के साथ ही व्यावसायिक संगठन अथवा (श्रेणी-धर्म) 'श्रेणी' का उदय हुआ, जो बाद में एक जाति बन गई। 'श्रेणी' के सदस्यों के व्यवहार का अनुशासन एक श्रेणी-अदालत द्वारा किया जाता था। रीतिरिवाजों के अनुसार इन व्यावसायिक संगठनों के पास कानून की ताकत होती थी। ये व्यावसायिक संगठन बैंकों का काम, पैसे के लेन-देन, और न्यासी का भी काम करते थे। प्रायः ये सभी काम एक भिन्न प्रकार के व्यापारियों द्वारा किया जाता था। जिन्हें श्रेष्ठिन् (वर्तमान में उत्तर भारत में सेठ और दक्षिण भारत में चेट्टी और चेट्टीयार कहा जाता है) इस प्रकार 500 ई पू से 500 ई. पश्चात् की अवधि में जाति व्यवस्था एक सुनिश्चित प्रथा बन गई। जातियों की संख्या में आशातीत वृद्धि हो गई क्योंकि नए हस्तशिल्पों का उदय, नए लोगों का आगमन, अन्तर्जातीय विवाह (अनुलोम और प्रतिलोम) और जातिश्रेणियों में अनेक जनजातिय समूहों का आगमन हो रहा था। धर्मशास्त्रों और स्मृतियों ने प्रत्येक जाति के कर्तव्यों को निर्धारित करने का प्रयत्न किया। जातियों के मध्य संबंध प्रायः सजातीय विवाह, सहभोज और शिल्पकर्म की विशिष्टता के आधार पर निर्धारित थे।

पांचवीं और सातवीं शताब्दियों के बीच में वर्ण/जाति व्यवस्था में और भी अधिक परिवर्तन आए। भूमि-अनुदान के कारण भूमिपतियों की उत्पत्ति के फलस्वरूप वैश्य सेवा करने वाले किसान बन गए। बहुत से जनजातिय किसान शूद्रों के रूप में परिवर्तित हो गए। धीरे-धीरे शूद्र भी अब वैश्यों के समान किसान बन गए। अब वैश्य और शूद्र एक श्रेणी में बंध गए। लेकिन गंगा की तराई से भिन्न क्षेत्रों में जातिप्रथा एक भिन्न रूप में सामने आई। बंगाल में, दक्षिणी भारत और अन्य सीमावर्ती प्रान्तों में मुख्यतया दो जातियां उभर कर सामने आई-ब्राह्मण और शूद्र। सातवीं शताब्दी के बाद से उत्तरीभारतीय समाज में राजपूत एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में उभरे। इस काल में जाति व्यवस्था लोगों के मन में इतनी जटिल हो गई कि पौधों को भी जाति/वर्ग व्यवस्था के आधार पर विभाजित किया जाने लगा। इस युग की एक पुस्तक में विभिन्न आकार के घरों को भी वर्णव्यवस्था के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

मध्यकाल में, विशेष रूप से दक्षिणी भारत में एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ जिसमें शूद्रों को सत् (पवित्र) और असत् (अपवित्र) वर्गों में विभाजित कर दिया गया। दक्षिणी भारत में विशिष्ट विभाजन हुआ जिसे इदंगई (बाँयाहाथ) और वेलंगई (दाँया हाथ) कहा जाता था। मनु ने 61 जातियों को माना है जबकि एक अन्य ग्रन्थ में सैंकड़ों मिश्रित जातियों (वर्णसंकर) का परिगणन किया है। राजपूतों के अतिरिक्त इस युग में कायस्थ नामक जाति भी सामने आई। परम्परानुसार कायस्थ लोग बही खाते का काम करते थे, बाद में यह वर्ग एक अन्य जाति के रूप में बदल गया क्योंकि सभी कायस्थों ने मिल कर एक अलग जाति बना ली जिसमें अन्तर्विवाह होने लगे। प्रायः इस जाति के अधिकांश लोग अपनी उत्पत्ति किसी महान व्यक्ति



टिप्पणी

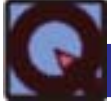
से बताते हैं और अपनी निम्न स्थिति की वजह आर्थिक या अन्य कोई स्थिति बताते हैं। उत्तरी भारत में एक अन्य महत्वपूर्ण जाति खत्री यह दावा करते हैं कि वे मूलतः क्षत्रिय थे परन्तु वाणिज्य करने लगे जिसने उनको अपनी साधियों की दृष्टि में गिरा दिया और उन्हें वैश्यों का दर्जा स्वीकार करना पड़ा। गुर्जर, जाट और अहीर सभी क्षत्रिय मूल का दावा करते हैं, जिस पद को उन्होंने विभिन्न कारणों से छोड़ दिया। उच्च जाति को मूल बताने की प्रक्रिया 1950 ई. तक चलती रही जब तक कि भारतीय संविधान ने अनेक सरकारी नौकारियों में निम्न जातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान नहीं कर दिया।

जाति व्यवस्था की अनेक क्षेत्रीय विभिन्नताएँ भी हैं। 8वीं शताब्दी के बाद विभिन्न क्षेत्रों और क्षेत्रीय चेतना के पनपने के कारण ये विभिन्नताएँ पैदा हुईं। उत्तर भारतीय ब्राह्मण न केवल गोत्र के आधार पर बल्कि अपने निवास के आधार पर भी बंटे हुए हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि कान्यकुब्ज सरयूपारीयर और मैथिल ब्राह्मण क्रमशः कन्नौज, सरयू नदी के पार तथा मैथिला प्रदेशों से संबंधित है। राजपूत जाति की अनेक उपजातियों के साथ उनके आरम्भिक जनजातिय नाम लगे होते हैं जैसे तोमर, कच्छवाह, हांडा, चौहान आदि। इन सब उपजातियों ने अपने लिए गोत्र भी चुन लिए। इस तरह मध्यकाल में जाति, उप जाति तथा गोत्रों की संख्या बढ़ती चली गई। मराठा भी एक जाति बन गई।

आधुनिक समय में जाति व्यवस्था ने नई विशेषताएँ धारण कर ली। इस प्रकार उपनाम जोड़ने की प्रथा चल पड़ी। एक विशेष जाति या उप जाति कभी-कभी एक से अधिक उपनाम धारण करने लगी। तथापि इस विषय में अनेक विविधताएँ पाई जाती हैं। जाति और जातिविरोधी आन्दोलनों के परिणामस्वरूप आधुनिक समय में कुछ और जातियाँ बनी हैं। इस प्रकार ब्रह्म-समाज ने एक नया दर्जा अपनाया जो प्रायः जाति के ही समान हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि जाति व्यवस्था की कार्य पद्धति अत्यन्त जटिल है। महत्वपूर्ण क्षेत्रीय विभिन्नताएँ भी मिली हैं। और इस कारण इसे सटीक तौर पर परिभाषित करना कठिन है। क्षेत्र आर्थिक स्थिति, राजसत्ता से सामीप्य, दस्तकारी, पेशा, किसी एक देवता की पूजा करना आदि सभी ने जाति के निर्माण में और परवर्ती परिवर्तनों के अन्तर्गत अपनी अपनी भूमिका का निर्वाह किया है।

जाति व्यवस्था का प्रभाव इतना गहरा रहा है कि मध्यकाल के महत्वपूर्ण धर्मसुधारकों जैसे **बासव**, **रामानन्द**, और **कबीर** आदि ने अपने अनुयायियों के बीच जाति व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयत्न किया लेकिन उनके नाम और उपदेश के आधार पर उनके सम्प्रदायों ने एक अन्य जाति का रूप धारण कर लिया। सिक्ख भी जातिगत भावनाओं से ऊपर नहीं उठे। यहाँ तक कि मुसलमानों में भी जातिगत समूह बन गए। केरल में सीरियन ईसाई जो पहले वर्गों में बंटे हुए थे, बाद में जातिगत समूहों में बदल गए। ईसाई धर्म में परिवर्तित लोग अपने जातिगत कुरीतियों को अपने साथ ले आए और ऊंची जाति के धर्मान्तरित ईसाई अपने को नीची जाति के धर्मान्तरित ईसाइयों से पृथक समझने लगे।



पाठगत प्रश्न 19.1

1. अलग से पहचाना जाने वाला प्राचीनतम सामाजिक संगठन कौन सा था?
.....
2. वैदिक काल के किन्हीं दो जनजातिय समूहों के नाम बताइए।
.....
3. द्विज का क्या अर्थ है?
.....
4. वे लोग कौन थे जिनके भारत में आने पर जाति प्रथा में अनेकों परिवर्तन हुए?
.....
5. शूद्रों को कब शुद्ध और अशुद्ध वर्गों में विभाजित किया गया?
.....



टिप्पणी

19.2 अस्पृश्यता

भारतीय समाज में शुद्धता और अशुद्धता की अत्याधिक स्पष्ट झलक एक ऐसे सामाजिक वर्ग के निर्माण में दिखाई देती है जिसे (अछूत) या अन्त्यज कहा जाता है। इन लोगों को ब्राह्मणवर्गीय समाज के बाहर का हिस्सा माना जाता था। अस्पृश्यता की यह भावना वैदिक युग की अन्तिम अवस्था में पनपी और बुद्ध के समय तक एक अलग सामाजिक श्रेणी बन गई। कभी कभी इन्हें पंचम वर्ण (पांचवी जाति) भी कहा जाता था। बहुत से अछूतों को चाण्डाल भी कहा जाता था। उन्हें उच्च जाति वालों के गांवों में भी रहने की अनुमति नहीं थी और मुख्य बस्तियों के बाहर विशेष बस्तियों में रहना पड़ता था। उनका प्रमुख कार्य मृत पशुओं को ले जाना तथा मृतकों का दाह संस्कार करना होता था। कानून की पुस्तकों ने नियम निर्धारित किए कि उन्हें मृत शवों के वस्त्र पहनने चाहिए जिनका उन्होंने दाहसंस्कार किया। टूटेफूटे बर्तनों में भोजन खाना चाहिए, और केवल लोहे के आभूषण ही धारण करने चाहिए। गुप्तकाल तक उनका स्तर इतना नीचे गिर गया कि उन्हें शहर में प्रविष्ट होने पर एक लकड़ी के फट्टो को बजाना पड़ता था। शिकारी (निषाद), मछली पकड़ने वाले मछुआरे (कैबर्त), चमड़े के काम करने वाले (चर्मकार), झाड़ु बुहारी करने वाले (कुक्कुस) और टोकरी बनाने वाले (वेण) ये सभी अछूतों की श्रेणी में सम्मिलित कर दिए गए। डोम एक आदिम जनजाति समूह था जो जाति आधारित वर्ग के सम्पर्क में आने पर अछूत कहलाने लगा। बहुत से शूद्र राजाओं की तरह हम डोम राजाओं के बारे में भी सुनते हैं। म्लेच्छ भी अछूत माने जाते थे। यह छुआछुत की भावना अब एक अपराध मानी जाती है परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में यह अब भी विद्यमान है। महात्मा गांधी ने इस प्रथा को दूर करने के लिए एक आन्दोलन प्रारंभ किया। उन्होंने इसे 'हरिजन' का नाम दिया। भारत सरकार ने ऐसे लोगों के विरुद्ध जो छुआछुत को बढ़ाते हैं अथवा मानते हैं, अनेक कानूनों का निर्माण किया है।



टिप्पणी

शिक्षा और अन्य सामाजिक आन्दोलनों ने भी इन दो वर्गों में गहरे अन्तराल को कम करने के लिए अपने अपने ढंग से योगदान दिया है। यह आशा की जाती है कि यह अमानवीय प्रथा शीघ्र ही दूर हो जाएगी।

19.3 दास प्रथा

भारत में विद्यमान दास प्रथा प्राचीन यूनान और रोम से स्वरूप और सार रूप में भिन्न थी। इसीलिए मेगस्थनीज को भारत में दासता के कोई चिन्ह नजर नहीं आए लेकिन वह अपने निर्णय में निश्चित रूप से गलत था। दास प्रथा एक सुस्थिर परम्परा थी और स्वामी और दास के बीच कानूनी सम्बन्ध स्पष्ट रूप में परिभाषित थे। उदाहरणतया यदि एक दासी अपने स्वामी से पुत्र पैदा करेगी तो न केवल वह कानून की दृष्टि में मुक्त मानी जाएगी बल्कि वह बच्चा भी कानूनन स्वामी का पुत्र माना जाएगा। अर्थशास्त्र में कहा गया है कि एक मनुष्य जन्म से भी गुलाम हो सकता है। स्वेच्छा से अपने को बेच कर या युद्ध में बन्दी बन कर, या नैयायिक दण्ड के अनुसार दण्डित होकर। संस्कृत में गुलाम के लिए 'दास' शब्द है जिसका प्रारम्भ में अर्थ होता था उस वर्ग का सदस्य जो घुमक्कड़ आर्य दलों के द्वारा पकड़ लिए जाते थे। ऐसे अनेक दास भारत में बन्दी बना लिए गए थे।

भारत में दासों को अपने स्वामी के घरों में नौकरी करनी पड़ती थी और वे निजी सेवक बन जाते थे। दास वस्तुतः अपने मालिक के परिवार में निम्नतम हैसियत का सदस्य होता था। स्वामी का अपने गुलामों के जीवन पर कोई अधिकार नहीं होता था। प्रारम्भिक युग में कोई दासों की मण्डी नहीं होती थी। फिर भी ईसवी सन् की आरम्भिक शताब्दियों में भारत और रोमन साम्राज्य के मध्य दासियों के व्यापार का आदान प्रदान होता था और 16वीं शताब्दी में विजयनगर साम्राज्य में दासों की मंडियाँ भी होती थीं। दिल्ली में सुल्तान के पास बहुत बड़ी संख्या में दास थे। जिन्हें 'बन्दीगण' (बन्दीगण) कहा जाता था लेकिन इनकी स्थिति परम्परागत गुलामों (दासों) से भिन्न थी। परन्तु उनकी स्थिति बिल्कुल अलग थी। गुलामों में से एक मलिक काफूर नामक गुलाम अलाउद्दीन खिलजी का सिपहसालार था। 16वीं शताब्दी में पुर्तगाली लोग बड़ी संख्या में दासों के व्यापार में संलग्न रहते थे। लिंकोसेन ने गोवा में प्रचलित दास व्यापार का बड़ा भयानक वर्णन करते हुए लिखा है- "वे गुलामों के साथ ऐसे व्यवहार करते थे जैसे हम घोड़ों के साथ करते हैं।" गुलामों की एक बड़ी संख्या को शाही भूमि पर और कारखानों में कार्य करना पड़ता था। इस प्रकार की गुलामी ब्रिटिश आधिपत्य तक प्रचलित रही और फिर लार्ड कार्नवालिस की एक घोषणा द्वारा इसे समाप्त किया गया। दास व्यापार अब बिल्कुल निषिद्ध है।

19.4 पुरुषार्थ, आश्रम और संस्कार

पुरुषार्थ, आश्रम और संस्कार, तीनों ही अवधारणाएँ परस्पर सम्बद्ध हैं। पुरुषार्थ का अर्थ है जीवन का उद्देश्य जो चार आश्रमों अर्थात् अवस्थाओं में बंटा हुआ है। प्रत्येक आश्रम के लिए कुछ संस्कार निर्धारित हैं जिन्हें करना आवश्यक है। हम प्रायः वर्णाश्रम धर्म के विषय में सुनते हैं। अर्थात् वर्ण और जीवन के उस भाग के लिए धर्म। धर्म के समान जीवन के चार उद्देश्य



टिप्पणी

हैं— धर्म उचित आचरणों, अर्थ जीविकोपार्जन के योग्य कार्य, काम संसारिक इच्छाएँ और मोक्ष (मुक्ति)

इन चार पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए एक मनुष्य के जीवन को चार लक्ष्यों में अथवा अवस्थाओं में विभाजित किया गया है। प्रत्येक आश्रय में पालन करने योग्य विशिष्ट नियमों का प्रावधान किया गया है। ये चार आश्रय सीढ़ियों के चार चरणों के समान हैं।

पहला आश्रम ब्रह्मचर्य कहलाता है जिसमें मनुष्य उपनयन संस्कार अर्थात् जनेऊ संस्कार के बाद प्रविष्ट होता है। इस आश्रम की अवधि में वह शिक्षा प्राप्त करता है और अपनी इच्छाओं और भावनाओं को वश में करना सीखता है। उसको अपने गुरु के पास जंगल में उसके आश्रम में रहना होता था और वह उसकी आज्ञा का पालन और सेवा करना सीखता था। वह अपने लिए और अपने गुरु के लिए भिक्षा मांग कर लाता था। उसे पानी लाना और आश्रम को साफ करना आदि कार्य करने पड़ते थे। वह सादा जीवन और उच्च विचार के आदर्शों का पालन करता था। एक शाही राजकुमार को भी यह सब कार्य करने पड़ते थे। इस प्रकार ब्रह्मचर्य की अवस्था व्यक्ति को गृहस्थ की भूमिका का निर्वाह करने के लिए तैयार करती थी।

गृहस्थाश्रम मनुष्य के जीवन की सबसे महत्वपूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में वह धर्म के अनुसार अर्थ और काम का अभ्यास करता है। वह विवाह करता है, बच्चे पैदा करता है और अपने परिवार का पालन-पोषण करने के लिए जीविकोपार्जन करता है और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करता है।

एक गृहस्थ के समस्त उत्तरदायित्व पूर्ण करके वह वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। इस अवस्था में वह परिवार को छोड़ कर वन में चला जाता है। वन में जाकर वह सभी सांसारिक वासनाओं से और इच्छाओं से छुटकारा पाने की साधना करता है। उसे केवल फल और कंदमूल पर गुजारा करना पड़ता है। वह ध्यान और तपस्या का भी अभ्यास करता है और यदि वह इस अवस्था में मर जाता है तो मोक्ष को प्राप्त करता है। अन्यथा वह संन्यास आश्रम में प्रवेश करता है जहाँ उसे पूर्ण वैराग्य का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। समाज से सभी सम्बन्ध त्याग कर वह केवल मोक्ष की प्राप्ति के लिए निरन्तर एक साधु की भाँति प्रयत्नशील रहता है।

यह योजना केवल आदर्श का प्रस्तुतीकरण करती है न कि वास्तविक स्थिति का। बहुत से मनुष्य कभी जीवन की पहली अवस्था से भी नहीं गुजरे उस रूप में जिस रूप में यह वर्णित है, जबकि बहुत थोड़े ही दूसरी अवस्था के परे गए। यह व्यवस्था जीवन के विभिन्न कार्यों-अध्ययन करना, पारिवारिक जीवन बिताना, और वैराग्य आदि एक ही समय में किये जाने के विरोध को सुलझाने के लिए बनाई गई होगी। यह भी सम्भव है कि आश्रम व्यवस्था समन्यवादी समुदायों जैसे बौद्ध धर्म और जैन धर्म को एक प्रकार से प्रभावहीन करने के लिए बनाई गई हो, क्योंकि ये धर्म युवाओं को धार्मिक और गृहस्थ दोनों जीवन एक साथ जीने के लिए प्रोत्साहित करते थे जोकि एक ऐसी रीति थी जिसे परम्परावादी लोगों द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता था यद्यपि बाद में इसके लिए भी नियम बना दिए गए।



टिप्पणी

इस योजना के अनुसार जीवन की चार अवस्थाएँ मानव के वास्तविक जन्म से न होकर उपनयन संस्कार के बाद ही प्रारम्भ होती थी। अतः बालक जनेऊ का संस्कार होने के बाद ही समाज का पूर्ण सदस्य बन पाता था। जीवन से मृत्यु पर्यन्त जीवन की सभी अवस्थाओं में उपनयन संस्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कार माना जाता था। संस्कारों की संख्या 40 के करीब है। कुछ महत्त्वपूर्ण संस्कार हैं- गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोभयन, जातकर्म, निष्क्रमण, अभप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, समावर्तन, विवाह तथा अंत्येष्टि। ये सभी संस्कार ऊपर के तीन वर्णों के लिए ही निर्धारित हैं न कि शूद्रों और अछूतों के लिए। वस्तुतः उच्च वर्णों की स्त्रियाँ भी इनमें से प्रमुख संस्कारों से वंचित रह जाती थीं।

19.5 जजमानी प्रथा

एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रथा जिसका विकास प्रारम्भिक मध्य युग में हुआ फिर जो आज तक ग्रामीण समाज में जीवित है वह है जजमानी प्रथा। एक ओर प्रभुत्वशाली किसानों का वर्ग और दूसरी ओर सेवक और कलाकार आदि वर्ग था जिनके मध्य जजमान प्रथा एक पूरक रिश्ते का निर्वाह करती थी। इस प्रथा के अन्तर्गत सेवक वर्ग जमींदार और उच्च प्रभुत्वशाली जाति वाले लोगों को अपनी सेवाएँ प्रदान करता था और बदले में फसल का परम्परा से चली आ रही दर पर कुछ हिस्सा और जमीन का टुकड़ा प्राप्त करता था। इस प्रकार कपड़े का काम करने वाले, नाई, पुजारी, माली, हलगाहे और विभिन्न प्रकार के शिल्पकार उच्च जाति वालों अथवा प्रभुत्वशाली जमींदारों के लिए काम करते थे और कुछ अवसरों पर वस्तु के रूप में या भूमि के रूप में उन्हें मेहनताना दे दिया जाता था। फिर भी सेवा करने वाली जातियों को यह स्वतन्त्रता थी कि वे अपने सामान के या सेवाओं को अन्यत्र बेच सकें। यह सेवा का रिश्ता अब समाप्त हो रहा है क्योंकि अब मुद्रीकरण, शहरीकरण तथा औद्योगीकरण का प्रभाव बढ़ रहा है। मध्य युग में यह संबंध विपत्ति और दुख के समय एक सुरक्षाकवच का कार्य करता था। उल्लेख मिलते हैं कि दुर्भिक्षों के समय जजमानी व्यवस्था से जो कलाकार नहीं जुड़े थे वे गरीब किसानों से भी बदतर स्थिति में पहुँच जाते थे।



पाठगत प्रश्न 19.2

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

1.पंचम वर्ण कहलाते हैं।
2. महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता के विरुद्ध एक आन्दोलन चलाया और उन्हें.....नाम दिया।
3.भारत में गुलामों को नहीं देख सका क्योंकि गुलामी यहाँ एक अलग रूप में प्रचलित थी।
4. मनुष्य जन्म से अथवा स्वेच्छा से अपने को बेचकर या युद्ध में बन्दी बनकर अथवा न्यायालय द्वारा दण्डित हो कर गुलाम बन जाता था यह कथन.....का वर्णन करता है।

5. पुरुषार्थ (जीवन के लक्ष्य) को चार.....में बांटा गया है।
6. जजमानी प्रथा के टूटने के क्या कारण थे?

19.6 परिवार

पारम्परिक भारतीय परिवार प्रायः एक बड़ा परिवार होता था जिसे संयुक्त परिवार कहा जाता है। एक संयुक्त परिवार वह होता है जिसमें दो या दो से अधिक पीढ़ियाँ एक ही छत के नीचे अथवा अलग अलग छत के नीचे रहती है परन्तु उनकी रसोई एक ही होती है। परिवार के सभी सदस्य वरीयता के अनुसार जायदाद के हकदार होते हैं। यह परिवार प्रायः पितृसत्तात्मक और पितृवंशज होता है जहाँ पिता अथवा घर का सबसे वृद्ध व्यक्ति घर का प्रमुख होता है और जायदाद की देखभाल करता है, और यह नेतृत्व पुरुष वर्ग में स्थानान्तरित होती रहती है। आधुनिक शहरों में अनेक छोटे परिवार ही देखे जाते हैं जिनमें पति, पत्नी और उनके बच्चे सम्मिलित होते हैं। यह परिवार भी पितृसत्तात्मक और पितृवंशज ही हैं लेकिन अभी भी बहुत से क्षेत्र हैं जहाँ परिवार मातृसत्तात्मक हैं और जहाँ नेतृत्व महिला वर्ग में ही चलता जाता है। यह व्यवस्था केरल और उत्तरपूर्वी क्षेत्र में नागालैण्ड के और मेघालय में प्रायः देखी जाती है।

चाहे परिवार की प्रकृति कुछ भी हो फिर भी परिवार समाज की प्राथमिक ईकाई है। परिवार के सदस्य अपने पूर्वजों की याद में मनाए गए श्राद्धों के आधार पर बंधे होते हैं। श्राद्ध से ही परिवार परिभाषित होता है। जो इस श्राद्ध कर्म में भाग लेते हैं वे सपिण्डी होते हैं अर्थात् एक ही परिवार के सदस्य। परिवार के सदस्यों के बीच यह सम्बन्ध उन्हें एक प्रकार की सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता था। विपत्ति के समय एक सदस्य विस्तृत परिवार के अन्य सदस्यों से सहायता के लिए आश्वस्त हो जाता था।

उत्सवों और शादियों के अवसर पर जिम्मेदारियों को मिलजुल कर निभाने से बंधन दृढ़ होता है। परम्परा से भारत में परिवार दो प्रकार के पवित्र कानून और रीति रिवाजों से अनुशासित होता है जिन्हें मिताक्षरा और दायभाग कहते हैं। बंगाल और आसाम के अधिकांश परिवार 'दायभाग' के नियमों का पालन करते हैं। और शेष भारत में 'मिताक्षरा' के नियम अनुपालित होते हैं। इस पवित्र कानून ने बहुत बड़े और प्रबन्धन के अयोग्य संयुक्त परिवारों के अलग होने के नियम बनाए। यह परिवार का टूटना प्रायः परिवार के मुखिया की मृत्यु के बाद होता था। मध्ययुग के पश्चात संयुक्त परिवार की जायदाद में सदस्यों की व्यक्तिगत जायदाद नहीं गिनी जाती थी और ऐसी सम्पत्ति का बंटवारा भी नहीं होता था। स्वतन्त्रता के बाद भारत में संविधान के अन्तर्गत प्रावधान किया गया है कि विवाद, तलाक, उत्तराधिकार, दायधिकार, गोद लेना, संरक्षक, बच्चों पर हक या निर्वाह के लिए खर्चा आदि सभी मामले प्रत्येक धार्मिक समुदाय अपने व्यक्तिगत धार्मिक नियमों के अधीन अनुशासित होंगे। अतः हिन्दु, बौद्ध, सिख, जैन समुदाय निर्धारित हिन्दु अधिनियम 1955-56 से अनुशासित है और मुस्लिम, ईसाई और पारसी परिवार अपने धर्म के 'व्यक्तिगत कानून' के अन्तर्गत आते हैं।



टिप्पणी



टिप्पणी

19.7 विवाह

परिवार का निर्वाह एक प्रमुख संस्कार के अन्तर्गत होता है जिसे विवाह कहा जाता है। इसकी प्रकृति के अनुसार विवाह भी कई प्रकार के होते हैं जैसे अनुलोम विवाह (उच्च जाति का पुरुष और निम्न जाति की स्त्री) या प्रतिलोम (नीच जाति का पुरुष और उच्च जाति की स्त्री) या विभिन्न जातियों वर्णों में सम्बन्ध एक पुरुष और एक स्त्री का विवाह, एक पुरुष का कई स्त्रियों से विवाह, एक महिला का कई पुरुषों से विवाह। भारतीय समाज में सभी प्रकार के विवाहों के उदाहरण देखे जा सकते हैं। पारम्परिक रूप से शादियाँ लड़के लड़की के मातापिता द्वारा तय की जाती हैं जो प्रायः एक ही जाति के होते हैं लेकिन जिनका गोत्र भिन्न होता है। (गोत्र अर्थात् एक ही पूर्वज से उत्पन्न) और प्रवर (निबंध स्तर) भिन्न होता है परन्तु यह गोत्र और प्रवर की बाध्यताएँ केवल द्विजों के लिए ही हैं, निम्न जाति के लिए गोत्र और प्रवर की बाध्यता नहीं है। तथापि समुदायों ने अपने लिए गोत्र बना लिए हैं। प्रवर से अभिप्राय है निषिद्ध वर्ग के लिए कानून जो बहुत कठोर होते हैं जहाँ एक समान पूर्वज की सन्तानों के बीच विवाह सम्बन्ध सात पीढ़ी तक नहीं हो सकते या मातृ सत्तात्मक पूर्वज की सन्तान हो तो पांच पीढ़ियों में वर्जित है। भारत के दक्षिण प्रदेश में तब भी यह रिवाज कभी भी नहीं माना गया और वहाँ ममेरे फुफेरे रिश्तों में भी शादियाँ हो जाती हैं और इन्हें वैधानिक और सामाजिक स्वीकृति भी प्राप्त है। इन वर्गों के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम सन 1955 में अपवाद स्थितियाँ का निर्धारण किया गया है।

सामान्यतया एकल विवाह की प्रथा का ही पालन किया जाता है जिसमें एक व्यक्ति का विवाह एक समय में एक ही स्त्री से होता है लेकिन परम्परा में बहुविवाह भी निषिद्ध नहीं था। अमीर और शक्तिशाली लोग एक से अधिक पत्नियाँ भी रखते थे। बहुविवाह सामान्यतया कई कारणों से होते थे। प्राचीन काल में राजाओं को शक्तिशाली अन्य राजाओं से सम्बन्ध बनाने होते थे और विवाह एक सर्व सुलभ उपाय था। चन्द्रगुप्त और अकबर के विवाह इसी प्रकृति के थे। एक पुत्र होने की धार्मिक भावना के कारण भी कई बार कई पत्नियों के होने का कारण बन जाता था। लेकिन आधुनिक कानून के अन्तर्गत बहुविवाह गैर कानूनी माना गया है। केवल मुस्लिम ही चार शादियाँ कर सकते हैं लेकिन वह भी किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ही स्वीकृत है।

ब्राह्मणवादी पवित्र ग्रंथों के अनुसार एक बार सप्त पदी (सात फेरे) हो जाने के बाद सम्बन्ध विच्छेद नहीं हो सकता। इसका अर्थ है कि वहाँ तलाक के लिए कोई स्थान नहीं है। अर्थशास्त्र बताता है कि कुछ अवस्थाओं में तलाक हो सकता है। बाद में ऐसे प्रावधानों को भुला दिया गया। अनेको निम्न वर्गों में आज भी तलाक की अनुमति है। आधुनिक काल में परस्पर रजामन्दी से, असामंजस्य, अत्याचार आदि दोनों पक्षों को ही तलाक के लिए अनुमति मिलने के सशक्त कारण हो सकते हैं।

हम पाँच पाण्डवों के साथ द्रौपदी के विवाह की कहानी से परिचित हैं। इसे बहुपति विवाह कहा जाता है। आज भी बहुत से समुदाय हैं जहाँ इस प्रकार के विवाह प्रचलित हैं और वैध माने जाते हैं। साधारणतया एक औरत भाइयों से ही शादी करती है, बहुत कम ही ऐसा होता



है कि पति भिन्न भिन्न समुदायों से हो। ऐसे विवाह मैदानी क्षेत्रों के ऊँची जाति वालों के द्वारा समाजविरोधी माने जाते हैं परन्तु उन समाजों में जहाँ ऐसी शादियाँ प्रचलित हैं वहाँ इसे अत्यन्त गर्व का विषय माना जाता है, शर्म का नहीं।

19.8 नारी जाति

भारत में नारी का इतिहास क्रमशः निम्न दशा की कहानी है। वैदिक काल में पितृसत्तात्मक व्यवस्था में भी युद्ध की छोड़ कर कबीले के सभी कार्यों में नारियों की प्रतिभागिता होती थी। वे सूत्रों की भी रचना करती थीं और वयस्क होने पर अपने पसन्द के पुरुष से विवाह भी कर सकती थीं। उत्तर वैदिक काल में कबीलाई संस्थाओं के समाप्त होने के साथ साथ उनकी स्थिति भी बिगड़ती चली गई। प्रारम्भिक कानूनी पुस्तकों ने नारी को शूद्र के समान मान लिया। कुछ व्यक्तिगत 'स्त्रीधन' के अतिरिक्त उनको सम्पत्ति का कोई अधिकार नहीं होता था। यहाँ तक कि उनको वेद पढ़ने का भी अधिकार नहीं दिया गया। ऐसी स्थिति में वेदेतर सम्प्रदायों ने स्त्रियों को कुछ सम्मान देना प्रारम्भ किया। पूर्वमध्यकाल के तान्त्रिक सम्प्रदाय ने महिलाओं को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया और महिला साधवियों का संगठन भी स्थापित किया।

सामान्य रूप से प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल में और पूर्व मध्यकाल में स्त्रियों को बौद्धिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए कभी प्रोत्साहित नहीं किया गया। उनका असली काम विवाह करके परिवार की देखभाल करना होता था। उच्च वर्ण की स्त्रियाँ कुछ शिक्षा प्राप्त करती थीं और उनमें से कुछ कविता नाटक आदि भी लिखती थीं। संस्कृत नाटकों में कुछ प्रमुख नारियाँ मात्र प्रायः पढ़ते, लिखते और गीतों की रचना करते हुए दिखाई गई हैं। मध्ययुग में और अब से कुछ समय पूर्व तक संगीत और नृत्य उच्च जाति की महिलाओं के लिए उपयुक्त नहीं समझा जाता था और केवल निम्न जाति और वेश्याएँ ही इन कलाओं का अभ्यास करती थीं। लेकिन ऐसा प्रारम्भिक काल में नहीं था। ऋग्वैदिक काल को छोड़कर महिलाओं का स्थान समाज में निम्न ही था।

बालविवाह की प्रथा चल पड़ी। सती प्रथा भी प्रचलित हो गई। फिर भी इबन बतूता जो कि एक विदेशी यात्री था, ने वर्णन किया है कि मध्ययुग में सती होने के लिए सुलतान से आज्ञा लेनी पड़ती थी। विधवा विवाह की अनुमति नहीं थी लेकिन सम्पत्ति में विधवाओं को अधिकार प्राप्त था।

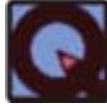
मध्य युग में, उच्च जाति की स्त्रियों में पर्दा प्रथा भी प्रचलित हुई। अरब और तुर्कों ने यह रिवाज इरानियों से सीखा और वे इसे भारत ले आए। उन्हीं के कारण उत्तरी भारत में यह प्रथा फैल गई। नारियों के साथ किए गए व्यवहार पर दृष्टिपात करते हुए कहा जा सकता है यह प्रथा वैदिक काल से ही प्रारम्भ हो चुकी थी। मध्य युग में पर्दा उच्च वर्ग की महिलाओं का प्रतीक बन गया था और जो अपने को उच्च वर्ग का दिखाना चाहती थीं, इस प्रथा का अनुकरण करती थीं। निम्न जाति में यह प्रथा कम प्रचलित थी।

भारत में मुगल प्रभुत्व की अवनति और अंग्रेजी शासन के विस्तार के साथ विभिन्न दिशाओं में आधुनिक विचारों ने परिवर्तन की लहर पैदा की। आधुनिक शिक्षा के अन्तर्गत



टिप्पणी

अनेकोधर्म सुधारकों ने महिलाओं की स्थिति में सुधार और उसे ऊपर उठाने के लिए आन्दोलन चलाए। राम मोहन राय, राधाकान्त देव, भवानी चरण बैनर्जी आदि के प्रयत्नों से 1829 ई. में सतीप्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। 1895 में बालिका शिशु की हत्या को कत्ल के समान माना जाने लगा। स्वतन्त्र भारत में 1955 के हिन्दु विवाह कानून के माध्यम से वर की न्यूनतम आयु 18 वर्ष और वधू की आयु 15 वर्ष निर्धारित कर दी गई। 1856 में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के प्रयत्नों से पहला विधवा विवाह सम्पन्न कराया गया। पं. विष्णु शास्त्री ने 1860 में विधवा विवाह संघ की स्थापना की। उन सब के प्रयत्नों के फलस्वरूप नारियों की स्थिति में सुधार हुआ। अभी वर्तमान में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने पिता की सम्पत्ति में पुत्री का भी अधिकार स्वीकृत किया गया। समाज में बढ़ती हुई जागरूकता और कानूनी व्यवस्था के कारण महिलाओं की स्थिति में निःसंदेह और अधिक सुधार होगा।



पाठगत प्रश्न-19.3

1. अनुलोम और प्रतिलोग विवाहों का आधार क्या है?
.....
2. एकल विवाह क्या है?
.....
3. भारत में परम्परागत परिवारों को अनुशासित करने वाले कानून और रीति रिवाजों के नाम लिखिए।
.....
4. प्राचीन भारत में स्त्रियों की निजी सम्पत्ति को क्या कहा जाता था जिसके सिवाय उन्हें कोई अन्य सम्पत्ति का अधिकार नहीं था।
.....

19.9 भारत के जनजाति समुदाय

जनजाति उन समुदायों का आधुनिक नाम है जो बहुत प्राचीन हैं, और इस देश के सबसे प्राचीन निवासी हैं। सामान्यतया जनजातिय जनसंख्या की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं-

1. जनजाति समूहों की जड़े इस धरती में बहुत प्रारम्भिक समय से जमी हुई हैं।
2. वे प्रायः पहाड़ियों और जंगलों में एकान्त में जीवन बिताते हैं।
3. उनके सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक विकास को प्राथमिकता देना आवश्यक है।
4. उनके सांस्कृतिक परिवेश (भाषा, संस्थाएँ, विश्वास और रीति रिवाज), उनका जीने का तरीका समाज के दूसरे वर्गों से बहुत भिन्न होता है।



टिप्पणी

जनजातीय लोग मूलनिवासी होते हैं जिन्हें चौथी दुनिया कहा जाता है। ये लोग किसी देश की प्राचीनतम जनसंख्या वे वंशज होते हैं और आज उन्हें उनके अपने देश के अधिकारों से पूर्ण रूप से अथवा अंशतः वंचित कर दिया गया है। मूलनिवासी अपनी संस्कृति, धर्म, सामाजिक और आर्थिक संगठनों में एकदम भिन्न और विविध होते हैं। उनका आज भी बाहरी दुनिया द्वारा शोषण किया जा रहा है। कुछ लोग उन्हें आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिमूर्ति के रूप में आदर्श मानते हैं। कुछ अन्य उन्हें आर्थिक प्रगति में रूकावट के रूप में देखते हैं। वे अपनी विशिष्ट संस्कृतियों की अनुपालना करते हैं। वे विगत उपनिवेशवाद के शिकार हैं। कुछ अपनी परम्पराओं के अनुसार रहते हैं, कुछ को अनुदान मिलता है, कुछ कारखानों में काम करते हैं, कुछ अन्य पेशों में है जिस धरती पर वे रहते हैं, उसके साथ बहुत निकट का सम्बन्ध बनाया हुआ होता है और उनमें परस्पर आदान प्रदान की सहयोगत्मक भावना निहित होती है और अपनी धरती और अपने जीवन का बहुत आदर करते हैं।

भारत में जनजातियों को सामान्यतया आदिवासी कहा जाता है जिसका अर्थ है मूल निवासी। प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय साहित्य में भारत में रहने वाले अनेकों मूलनिवासी जनजातियों का उल्लेख प्राप्त होता है। ब्राह्मणिक युग में जातिप्रथा के प्रारम्भ होने से पहले ये लोग विभिन्न जनजाति समूहों में विभाजित थे।

भारत सरकार ने 427 समुदायों का उल्लेख किया है और उन्हें अनुसूचित जनजातियों में सम्मिलित किया है। ये समुदाय अनुसूचित जनजाति कहलाते हैं। उन्हें भारत के संविधान के अन्तर्गत विशेष आरक्षण और अधिकार प्रदान किए गए हैं।

आकड़ों के अनुसार, तीन बहुत महत्वपूर्ण जनजाति समुदाय हैं गोंड, भील और संथाल। इनमें से प्रत्येक की जनसंख्या प्रायः 30 लाख से भी अधिक है। इनके अतिरिक्त मीणा, मुण्डा, आगोनि आदि हैं जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या 5 लाख से अधिक है। 11 से डेढ़ लाख तक की जनसंख्या वाले 42 जनजातीय समूह हैं।

भारतीय संविधान के अनुसार जो अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में गिने जाते हैं, उन जनजातीय लोगों की संख्या 8.43 करोड़ है और 2001 की जनसंख्या के अनुसार कुल जनसंख्या का 8.2 प्रतिशत के बराबर है।

जनजातीय जनसंख्या के वितरण और विविधता के दृष्टिकोण से, भारत को सात क्षेत्रों में बांटा जा सकता है।

1. **उत्तरी क्षेत्र** - इस क्षेत्र के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हिमाचल के नीचे उत्तर प्रदेश का इलाका और बिहार में खास थारू, भोक्सा, भूटिया, गुज्जर और जैनसारी प्रमुख जनजाति समुदाय हैं, खासी बहुतपति विवाह वाला जनजाति समूह है, भूटिया गलीचे बनाते हैं और भारत-चीन सीमा पर व्यापार करते हैं। गुज्जर खेतीहर समुदाय है। इस क्षेत्र के जनजाति समूहों की प्रमुख समस्याएँ हैं पहुँच का अभाव, संप्रेषण का अभाव निर्धनता, निरक्षरता और भूमि का अहस्तान्तरण
2. **उत्तर पूर्वी क्षेत्र** - इस क्षेत्र में सात उत्तर पूर्वी राज्य आते हैं और यहां के समूह यहाँ



टिप्पणी

है नागा, खासी, गारो, मिशिंग, मीरी, कबी और अपताउज प्रमुख जनजातीय समुदाय हैं। इन जनजाति समूहों की दो प्रमुख समस्याएँ हैं- खेती के बदलते स्वरूप के कारण पारिस्थितिक क्षरण तथा संचार सुविधा की कमी के कारण पहुंच से दूर रहना। नितान्त अकेलेपन के कारण, इस क्षेत्र के जनजाति समूहों ने प्रमुखधारा के भारतीयों के साथ अपने ऐतिहासिक अनुभव नहीं जोड़े बल्कि अपनी पड़ोसी जातियों के साथ इतिहास का हिस्सा बनते रहे। इसी से स्पष्ट होता है कि क्यों इन जनजातीय लोगों की प्रमुखधारा से दूरी है।

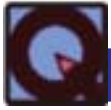
3. **केन्द्रीय क्षेत्र** - इस क्षेत्र में जनजातीय समूहों के लोगों का सबसे अधिक घनत्व है। यह दक्षिणी मध्य प्रदेश, उत्तरी ओडिसा को पार करते हुए दक्षिणी बिहार तक विस्तृत हैं। इस क्षेत्र में रहने वाले प्रमुख कबीले हैं सथाल, हो, बैगा, अभुजनरिया, मुरिया, मुण्डा और बिरहार। इन जनजातियों द्वारा झेली जा रही प्रमुख समस्याएँ हैं- अपनी जमीन से दूर किया जाना और ऋण। इस क्षेत्र के जनजातियों के मध्य, सथालों ने अपनी निजी लिपि विकसित की है, जिसे ओले चिकी कहा जाता है। बैगा एक प्रमुख जनजातीय समूह है जो झूम कृषि करने वाली प्रमुख जनजाति है। बिरहोर एक बहुत ही पिछड़ा जनजातीय समूह है। इस क्षेत्र में इसके अत्यधिक पिछड़ेपन के कारण और कोई जीविकोपार्जन का साधन न होने के कारण यह जनजातीय समूह समाप्ति की ओर जा रहा है।
4. **दक्षिणी क्षेत्र** - इस क्षेत्र के अन्तर्गत कर्नाटक के आंध्रप्रदेश के समीपवर्ती पहाड़ियों सह नीलगिरी पर्वत क्षेत्र आता है। यह बहुत छोटा क्षेत्र है जहां भारत की मुख्य धरती पर सबसे अधिक पिछड़े, अलग थलग पड़े हुए जनजाति समुदाय हैं। इस क्षेत्र के प्रमुख जनजातिय समूह हैं- टोडा, कोया, चेंचू और अल्लर। टोडा एक चरवाहा समुदाय है जो भैंसों को चराते हैं। अल्लर मुख्यतया गुफाओं में और सामान्यतया पेड़ों के ऊपर भी रहते हैं। चेंचू एक बहुत पिछड़ी जाति है जो शिकार करके या फल फूल इकट्ठा करके गुजारा करती है। इन जनजातीय समूह की प्रमुख समस्याएँ हैं बदलती फसलें, आर्थिक पिछड़ापन, अकेलापन, संप्रेषण का अभाव और भाषाओं के समाप्त होने का खतरा।
5. **पूर्वी क्षेत्र** - इस क्षेत्र में पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा सम्मिलित हैं और परज, कोंध, बोंडा, भूमिया, गडाबा, भून्या और स्कोरा आदि प्रमुख जनजातीय समुदाय हैं। इस क्षेत्र के जनजातिय समूहों की प्रमुख समस्याएँ हैं- आर्थिक पिछड़ापन, वनों के अधिकारियों और ठेकेदारों द्वारा शोषण, स्व-भूमि से दूर कर दिया जाना, रोगों का बाहुल्य और औद्योगिक परियोजनाओं के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलाव आदि।
6. **पश्चिमी क्षेत्र** - इस क्षेत्र में राजस्थान और गुजरात सम्मिलित है। यहाँ जो जनजातीय समूह पाये जाते हैं वे हैं- भील, गरासिया और मीना। मीना एक बहुत उन्नतिशील और सुशिक्षित जनजातिय समुदाय है।
7. **द्वीप क्षेत्र** - अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह, लक्ष्यद्वीप, दमन और दियु इसी क्षेत्र में आते हैं। ग्रेट अंडमानी, संधीनलीज, जारवा, ऑंग, निकोबारी, और शैम्पन आदि इस क्षेत्र



टिप्पणी

के जनजातीय समूह हैं। इनमें से कुछ कबीले बहुत ही पिछड़े हुए हैं और पाषण युगी जीविकोपार्जन के तरीको से बाहर निकलने का प्रयत्न कर रहे हैं। इन जनजातीय समूह में से अधिकांश बहुत छोटे जनजातीय समूह के रूप में वर्गीकृत किये गये हैं, जो समाप्ति के कगार पर हैं। अस्तित्व के शेष रहने की समस्या के अलावा, रोगों का बाहुल्य और कुपोषण इस क्षेत्र के जनजातीय समुदायों की प्रमुख समस्याएँ हैं।

इन जनजातीय क्षेत्रों के लिए सरकार की प्रमुख योजना का उद्देश्य है, जनजातिय समुदायों की रक्षा करना और इनका आर्थिक विकास करना। जनजातीय योजना के अंगीभूत रणनीति कार्यक्रम की शुरुआत पांचवी पंचवर्षीय योजना से हुई। यह एक बहुत व्यापक, संगठित और एकीकृत कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य है जनजातीय समूहों का शोषण से बचाव, सामाजिक-आर्थिक विकास, अन्य क्षेत्रों के साथ इनके अन्तराल को दूर करना, और जीवन के स्तर में वृद्धि करना है।



पाठगत प्रश्न 19.4

1. जनजातीय जनसंख्या की दो विशेषताएं लिखिए
.....
2. मूल निवासी कौन लोग होते हैं?
.....
3. भारत में जनजातीय समूहों के लिए क्या शब्द प्रयोग किया जाता है?
.....
4. कितने समुदायों को भारत में अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया गया है?
.....
5. भारत में जनजातीय जनसंख्या का कुल जनसंख्या में कितना प्रतिशत है?
.....
6. भारत में जनजातीय जनसंख्या के निर्धारक तत्व कौन से हैं?
.....
7. अनुसूचित जनजाति को पहचानने के दो लक्षण कौन से हैं?
.....
8. उत्तरी भारत में प्रमुख जनजातीय समूह कौन-कौन से हैं?
.....
9. पूर्वी क्षेत्र के जनजातीय समूहों की प्रमुख समस्याएँ कौन सी हैं?
.....
10. बहुत कम जनसंख्या वाले कुछ जनजातीय समूहों के नाम लिखिए।
.....



टिप्पणी

11. जनजातिय समूह अंगीभूत रणनीति योजना कब प्रारम्भ की गई?

.....

12. जनजातीय अंगीभूत रणनीति योजना क्या है तथा इसके उद्देश्य क्या हैं?

.....



आपने क्या सीखा

- भारत बहुमुखी पहचानों वाला देश है जो क्षेत्र, भाषा और धर्म पर आधारित हैं और इनमें से प्रत्येक के कुछ कम या ज्यादा विशिष्ट सामाजिक संरचनाएँ हैं जो युगों के अन्तराल में बन पाई हैं।
- जनजातीय समुदाय जो प्राचीनतम महत्वपूर्ण सामाजिक संगठनों में से एक है, उसका प्रारम्भ वैदिक युग से माना जा सकता है।
- प्रारम्भिक अन्तर रंग पर आधारित था जो बाद में 'वर्ण व्यवस्था' की जटिल प्रक्रिया बन गई। जनजातिय समूह ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र श्रेणियों में बंट गए।
- वैदिकोत्तर समाज में बौद्ध और जैन धर्म के उदय के साथ तथा शक, कुषाण, पार्थियन और इण्डो ग्रीक लोगों के आने पर वर्ण/जाति व्यवस्था में और अधिक परिवर्तन हुए।
- 8वीं शताब्दी के बाद क्षेत्रीय चेतना और क्षेत्रों के निर्धारित होने पर जाति व्यवस्था में क्षेत्रीय विभिन्नताएँ पैदा हो गई और यह व्यवस्था अधिक से अधिक जटिल होती गई और कई कारणों से जातियों और उपजातियों में वृद्धि होती चली गई।
- सर्वाधिक घृणित कुरीति अस्पृश्यता की जड़े वैदिक काल के अंतिम दौर में शुरू हुईं और महात्मा बुद्ध के समय तक इसने अलग से एक पृथक रूप धारण कर लिया।
- भारत में गुलामी प्रथा थी लेकिन प्राचीन यूनान अथवा रोम में जारी दास प्रथा से इसका रूप अलग था।
- पुरुषार्थ, आश्रम और संस्कार अन्तः सम्बद्ध अवधारणाएँ हैं।
- जजमानी व्यवस्था एक महत्वपूर्ण संस्था है जो एक ओर प्रभुत्वशाली कृषक जातियों और दूसरी ओर कलाकार शिल्पी तथा सेवा करने वाली जातियों के बीच पूरक सम्बन्ध बनाता है। यह प्रथा भारतीय ग्रामीण समाज में आज भी प्रचलित है परन्तु अब मौद्रीकरण, शहरीकरण और औद्योगीकरण के प्रभाव से समाप्त होती जा रही है।
- परिवार एक बहुत महत्वपूर्ण संस्कार विवाह के परिणाम स्वरूप अस्तित्व में आता है। विवाह भी अनेक प्रकार के होते हैं जैसे अनुलोम (ऊँची जाति का पुरुष निम्न वर्ग की स्त्री) प्रतिलोम (ऊँची जाति की स्त्री और नीची जाति का पुरुष) एकल विवाह (एक मुखी) बहु विवाह (अनेक पत्नी) बहुयतित्व (अनेक पति), भारतीय समाज में सभी प्रकार के उदाहरण मिलते हैं।

- पारम्परिक भारतीय परिवार एक संयुक्त परिवार है जो दो प्रकार के पवित्र कानून और रीतिरिवाजों का पालन करते हैं- मिताक्षर ओर दायभाग।
- आधुनिक काल के पहले तक भारतीय स्त्री की सामाजिक स्थिति में निरन्तर गिरवाट आती रहीं। फिर पिश्चमी शिक्षा के प्रसार से, विभिन्न सामाजिक और धार्मिक प्रयत्न उनकी दशा को सुधारने के लिए किए गए।



टिप्पणी



पाठान्त प्रश्न

- भारत में विविध पहचानों की मूल के विषय में विवेचना कीजिए।
- वर्ण और जाति व्यवस्था में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
- भारत में जाति प्रथा की विशेषताएँ प्रतिपाडित कीजिए।
- स्पष्ट कीजिए पुरूषार्थ, आश्रम और संस्कार कैसे परस्पर सम्बन्धित है।
- भारतीय समाज के इतिहास में नारियों के स्थान का परिचय दीजिए।
- जजमानी प्रथा क्या है? आजकल यह क्यों समाप्त होती जा रही है।



पाठगत प्रश्न में उत्तर

19.1

1. जनजाति समूह
2. भारत, यदु, पुरू (कोई दो)
3. दो बार उत्पन्न
4. शक, कुषाण, पार्शियन, इण्डो-ग्रीक
5. मध्ययुग

19.2

1. अस्पृश्यता
2. हरिजन
3. मेगस्थनीज
4. अर्थशास्त्र
5. आश्रम
6. शहरीकरण और उद्योगीकरण



टिप्पणी

19.3

1. वे विभिन्न वर्णों और जातियों में सहयोग पर आधारित होते हैं।
2. एक ऐसा विवाह जिसमें एक व्यक्ति एक समय में केवल एक ही व्यक्ति से विवाह कर सकता है।
3. मिताक्षरा, दायभाग
4. स्त्रीधन

19.4

1. अ. जनजातिय समूहों की जड़ें बहुत प्राचीनकाल से इस धरती से जुड़ी है।
ब. वे तुलनात्मक रूप से पहाड़ियों और वनों में रहते हैं।
2. जनजातिय समूह
3. आदिवासी
4. 427 समुदाय
5. 8.2%
6. वे निर्धारित होते हैं प्रथम रूप में उद्धार के इसारे से राजनैतिक और प्रशासनीय विचार के द्वारा भारतीय समाज का ऐसा वर्ग जो तुलनात्मक रूप में दूरदराज की पहाड़ियों और वनों में, और विकास के आकड़ों के अनुसार जो पिछड़े हुए होते हैं।
7. तुलनात्मक रूप से एकात्मक और पिछड़ेपन
8. खास, तारू, भोकसा, भूटिया, गुज्जर और जौनसारी।
9. आर्थिक पिछड़ापन, वनों के अधिकारियों और ठेकेदारों द्वारा शोषण, भूमि से दूरी, रोगों का आक्रमण, प्रौद्योगिक परियोजनाओं के द्वारा विस्थापन।
10. ग्रेट अन्डेमानी, जारवा, निकोबार, शैम्पैन
11. पांचवी पंचवर्षीय योजना के दौरान
12. यह बहुत व्यापक, अन्तबद्ध और सुसंगठित कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य है जनजातीय समूह के शोषण का समापन, सामाजिक-आर्थिक विकास, विकास में और अन्य क्षेत्रों में अन्तरो को दूर करना, जीवन स्तर में सुधार।